E-ISSN No: 2456-6713

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

Impact Factor: 5.924

योगाधारित प्राचीन भारतीय शिक्षा की वर्तमान में प्रासंगिकता

*डॉ जयपाल सिंह तोमर, **डॉ. संजय स्वरूप षटधर

*सहायक प्राध्यापक (समाज शास्त्र एवं योग), महाराजा मानसिंह महाविद्यालय ग्वालियर

**सहायक प्राध्यापक (वनस्पति शास्त्र), महाराजा मानसिंह महाविद्यालय, ग्वालियर

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.11211808

शोध सारांश :

हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति योग पर आधारित थी। योग शिक्षा द्वारा व्यक्ति में ज्ञान, कौशल, मूल्यों, नैतिकता, विश्वास, सदाचार, सहनशीलता आदि का विकास होता है। योग शिक्षा योग गुरू के मार्गदर्शन में प्रारम्भ होती है। यह शिक्षा व्यक्ति के सोचने, समझने, महसूस करने या कार्य करने के तरीके पर रचनात्मक प्रभाव डालती है। योग शिक्षा गुणवत्ता एवं दक्षता में व्यापक सुधार लाया जा सकता है। दैशिक एवं वैश्विक समस्याओं के समाधान के लिए योग शिक्षा का विश्वस्तर पर प्रचार–प्रसार करना आवश्यक है। योग शिक्षा सामाजिक परिवर्तन एवं राष्ट्र विकास का सशक्त साधन है। योग शिक्षा विकास प्रक्रिया में एक आवश्यक उत्पादक सामग्री का गठन करती है। इस प्राचीन शिक्षा को आधुनिक समाज एवं वैज्ञानिक व्यापक रूप से स्वीकार करते हैं। कोई भी समाज एवं राष्ट्र स्वस्थ एवं प्रगतिशील विचारों के माध्यम से ही विकास कर सकता है। स्वस्थ एवं प्रगतिशील विचारों का विकास योग शिक्षा द्वारा ही संभव है। वैसे सम्पूर्ण विश्व के वैज्ञानिक एवं समाजशास्त्री स्वीकारने लगे हैं कि किसी भी समाज एवं राष्ट्र की प्रगति का आधार स्वस्थ एवं चरित्रवान नागरिक ही होते हैं।

प्राचीन भारतीय शिक्षा सामाजिक–आर्थिक प्रगति हासिल करने, आय वितरण में सुधार, रोजगार के नये अवसर पैदा करने एवं मानसिक गरीबी के उन्मूलन में सहायक सिद्ध होती थी। यह वर्ग भेद, लिंग पूर्वाग्रह को भी दूर करती थी। यह केवल आध्यात्मिक विकास में ही सहायक नहीं होती थी बल्कि यह सामाजिक–आर्थिक मुद्दों का ज्ञान, जागरूकता, सूचना, कौशल और मूल्यों का प्रसार करके उस प्रक्रिया को तेज करने और काम करने में सहायक भी होती थी। इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा आत्मिक, सामाजिक एवं राष्ट्र विकास की मूल पद्धति है, जो व्यक्ति की स्वयं एवं दुनिया की समझ में वृद्धि करती है। मुनष्य के जीवन के हर पहलू में शिक्षा से एक अभूतपूर्व परिवर्तन देखा गया है। शिक्षा समाज की अपेक्षाओं को पूरा करने एवं नए मूल्यों की ओर निर्देशित करने का कार्य भी करती है। यह बुद्धि विकास में सहायता करती है। यह प्रगतिशील समाज एवं राष्ट्र नवनिर्माण के विकास में सहायक है।

E-ISSN No: 2456-6713

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

Impact Factor: 5.924

मूल शब्द : योग शिक्षा, समाज, राष्ट्र, नवनिर्माण, मानव कल्याण।

1. प्रस्तावना :

प्राचीन भारत में शिक्षा के औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार प्रचलित थे। औपचारिक शिक्षा के केन्द्र मन्दिर, आश्रम और गुरूकुल थे। ये उच्च शिक्षा के केन्द्र भी थे। अनौपचारिक शिक्षा परिवार, पुरोहित, त्यौहार, प्रसंग, पण्डित, सन्यासी आदि के माध्यम से दी जाती थी। अनेक धर्मशास्त्रों में इस बात का वर्णन मिलता है कि माँ ही बच्चे की प्रथम और श्रेष्ठ गुरू है, कुछ शास्त्रों में पिता को भी शिक्षक के रूप में स्वीकृति मिली है। जैसे–जैसे मानव सभ्यता का विकास हुआ वैसे–वैसे शैक्षणिक संस्थाओं का विकास भी होने लगा। प्राचीन भारतीय शिक्षा का प्रमुख केन्द्र गुरूकुल थे। इस व्यवस्था में विद्यार्थी अपने परिवार से दूर गुरू के घर पर निवास करते हुए शिक्षा प्राप्त करता था। वह गुरू के परिवार का सदस्य हो जाता था और गुरू भी उसे पुत्र सम स्वीकार कर उसके साथ पुत्रवत व्यवहार करता था। गुरू की पत्नी को गुरूमाता कहकर संबोधित किया जाता था। गुरूकुल प्रायः ग्रामों, नगरों, वनों एवं उपवनों में स्थापित किए जाते थे। वनों में गुरूकुल होते अवश्य थे किंतु उनकी संख्या बहुत कम होती थी। अधिकतर दार्शनिक, विचारक एवं आचार्य वनों में निवास करते थे। चिन्तन एवं मनन करना उनका मुख्य कार्य होता था। गुरूकुलों में दर्शनशास्त्र के साथ–साथ व्याकरण, ज्योतिष, नागरिक शास्त्र एवं युद्धविद्या का अध्ययन भी कराया जाता था।

प्राचीन शिक्षा योग पर आधारित थी। इस शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी के लिए शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की थी कि उसे सबसे पहले चरित्र की प्रेरणा मिलती थी। गुरू केवल विद्यार्थी की बौद्धिक प्रगति का ही ध्यान नहीं रखता था बल्कि उसके नैतिक एवं चारित्रिक आचरण की भी निगरानी रखता था। गुरू उन्हें इस प्रकार शिक्षित करता था कि विद्यार्थी अपने सामाजिक जीवन में सदाचार एवं शिष्टाचार के नियमों का पालन स्वतः ही करने लगते थे। विद्यार्थियों के सामने उच्च चरित्र एवं आदर्श वाले महापुरूषों एवं महान नारियों के आदर्श को प्रस्तुत किया जाता था जिससे विद्यार्थियों को चरित्र निर्माण की प्रेरणा मिलती थी। यही कारण था कि प्राचीन समय में विद्यार्थी चरित्र निर्माण के लक्ष्य को आसानी से प्राप्त कर लेते थे। अतः इस पद्धति द्वारा शिक्षित विद्यार्थी कालान्तर में आदर्श एवं चरित्रवान नागरिक बनते थे। इस शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी को अपने व्यक्तित्त्व विकास का पूरा अवसर प्राप्त होता था। प्राचीन शिक्षा व्यवस्थापकों ने व्यक्तित्त्व को दबाने का प्रयास नहीं किया बल्कि व्यक्तित्त्व के विकास के समस्त साधन उपलब्ध कराए।

2. अध्ययन का उद्देश्य :

इस शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य प्राचीन शिक्षा विशेषकर योग शिक्षा की विशेषताओं को स्पष्ट कर वर्तमान संदर्भ में उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालना है।

E-ISSN No: 2456-6713

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

Impact Factor: 5.924

2.1 शोध अध्ययन पद्धति :

यह अध्ययन पाठ्य, आलोचनात्मक, वर्णनात्मक, मूल्यांकनात्मक एवं व्याख्यात्मक विधियों का उपयोग करते हुए अध्ययन के प्राथमिक एवं द्वितीयक श्रोतों पर आधारित है। प्राथमिक श्रोत में व्यक्तिगत साक्षात्कार एवं द्वितीयक श्रोत में प्राचीन ग्रन्थ, शोध प्रबन्ध, शोध पत्र, समाचार पत्र, पत्रिकाएं, लेखकों के महत्त्वपूर्ण लेख आदि सम्मिलित हैं।

2.2 अध्ययन का महत्त्व :

शोधकर्ता ने प्राचीन शिक्षा (योग शिक्षा) एवं वर्तमान शिक्षा के सभी पहलुओं को समझने का प्रयास किया। वास्तविक तथ्यों पर आधारित इस अध्ययन का निष्कर्ष राष्ट्र एवं समाज के हित में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा, ऐसा शोधकर्ता का विश्वास है।

2.3 प्राचीन शिक्षा की वर्तमान में प्रासंगिकता:

चरित्र निर्माण :

चरित्र व्यक्ति का सबसे बड़ा आभूषण है। प्राचीन काल में चरित्र को बहुत महत्त्व दिया जाता था। प्राचीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य चरित्र का निर्माण करना था। विद्यार्थी के लिए इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की जाती थी कि उसे प्रारंभ से ही चरित्र के महत्त्व का ज्ञान हो और उत्तम चरित्र निर्माण की प्रेरणा मिले। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पाठ्य पुस्तकों एवं उपदेशों में सदाचार एवं महापुरूषों के चरित्र को सम्मिलित किया जाता था। विद्यार्थियों को आचार्य सदाचार के उपदेश देते थे। उन्हें इस प्रकार के वातावरण में रखा जाता था जिससे उनका चरित्र उत्तम बने। अतः उनके सामने महान पुरूषों के आदर्श बार–बार प्रस्तुत किए जाते थे।

शारीरिक विकास :

प्राचीन शिक्षा मात्र बौद्धिक विकास पर ही आधारित नहीं थी। यह शारीरिक विकास पर भी बल देती थी। इस हेतु गुरूकुलों में विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों एवं खेलों का आयोजन किया जाता था। भारतीय ऋषि–मुनि अच्छी तरह से जानते थे कि मोक्ष प्राप्ति के लिए एक स्वस्थ शरीर का होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। शरीर और मन आत्मोपलब्धि के साधन हैं। आत्मोपलब्धि हेतु शारीरिक विकास आवश्यक है। अतः शारीरिक स्वास्थ्य विकास के लिए दिनचर्या में व्यायाम एवं योगाभ्यास को सम्मिलित किया गया था।

व्यक्तित्त्व का विकास :

प्राचीन शिक्षा में विद्यार्थियों के सर्वांगीण व्यक्तित्त्व विकास पर अधिक बल दिया जाता था। शिक्षा के द्वारा विद्यार्थियों में सामाजिक, चारित्रिक, नैतिक, आत्म–विश्वास, आत्म–संयम, आत्म–सम्मान, सहनशीलता, परोपकार, बन्धुत्त्व आदि वैयक्तित्त्व के गुणों का

E-ISSN No: 2456-6713

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

Impact Factor: 5.924

विकास किया जाता था। विद्यार्थियों को कार्य करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जाती थी। जिससे उनमें आत्म–निर्णय एवं उत्तरदायित्त्व की क्षमता विकसित हो सके।

आचरण की शुद्धता :

मनुष्य के व्यक्तिगत विकास पर खान–पान एवं आचार–विचार का गहन प्रभाव पड़ता है। इसीलिए प्राचीन शिक्षा में यम, नियम आदि की विवेचना की गई है। ऋषि–मुनियों ने स्थूल शारीरिक शक्ति एवं सूक्ष्म आत्मशक्ति के समय विकास भावना से आचरण पर अधिक बल दिया था। इसके लिए कई मर्यादाओं के पालन की बात कही थी यथा असत्य न बोलना, चोरी न करना, किसी को पीड़ा न पहुँचाना, अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह न करना, दुराचार न करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना आदि।

संस्कृति का संरक्षण :

प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य अपनी परम्परागत उपयोगी संस्कृति का संरक्षण करके उसका प्रसार करना था। प्राचीन समय में विद्यार्थियों को ज्ञान प्रदान करके अपनी सांस्कृतिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित किया जाता था। यथा भारतीय संस्कृति में तीन ऋणों का प्रचलन था। देव ऋण, ऋषिऋण एवं पितृऋण। इन ऋणों से मुक्त होना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होता था। इन ऋणों से मुक्ति के लिए उन्हें कुछ कार्यों का सम्पादन करना पड़ता था। देवऋण से मुक्ति के लिए यज्ञ, ऋषिऋण से मुक्ति के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन तथा पितृऋण से मुक्ति के लिए सन्तानोत्पत्ति एवं माता–पिता की सेवा करना। ऐसी व्यवस्था की गई थी कि वर्तमान पीढ़ी इस व्यवस्था को भावी पीढ़ी को सौंपे जिससे संस्कृति एवं परम्पराएँ सुरक्षित रहें।

आध्यात्मिक विकास :

मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है अर्थात् जीवन मरण से मुक्त होना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्राचीन शिक्षा में पर्याप्त व्यवस्था की गई थी। आध्यात्मिक उन्नति केवल आत्मविकास के लिए ही नहीं थी बल्कि आध्यात्मिक उन्नति होने से व्यक्ति सत्य एवं वास्तविकता के मार्ग की ओर बढ़ता था। आध्यात्मिक प्रगति के माध्यम से ही व्यक्ति अपनी व्यष्टि चेतना का समष्टि चेतना में लय करता है।

अनुशासन का विकास :

समाज और राष्ट्र के लिए अनुशासन अति आवश्यक है। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में सत्यनिष्ठा, धर्माचरण, आचार–विचार, निश्छलता, नैतिकता आदि का समावेश किया गया था। इन गुणों के पालन से व्यक्ति में स्वतः ही अनुशासन का प्रादुर्भाव होने लगता था। अनुशासन के दो पक्ष माने गये हैं बाह्य अनुशासन एवं आंतरिक अनुशासन। इसमें आन्तरिक अनुशासन को महत्त्वपूर्ण माना गया है। अनुशासन ही आदर्श, नैतिक एवं स्वस्थ समाज के निर्माण का आधार है।

E-ISSN No: 2456-6713

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

Impact Factor: 5.924

विद्यार्थी को जीविकोपार्जन के लिए तैयार करना :

प्राचीन शिक्षा विद्यार्थी की आध्यात्मिक प्रगति के साथ–साथ उन्हें जीविकोपार्जन के लिए भी तैयार करती थी। विद्यार्थियों को इस प्रकार का ज्ञान भी दिया जाता था कि वे अपने भावी जीवन को व्यस्थित करने एवं सुचारू रूप से चलाने योग्य बन सकें। जीविकोपार्जन के लिए दी जाने वाली शिक्षा में पशुपालन, कृषि, व्यापार, चिकित्सा, ज्योतिष, युद्ध–कला आदि को सम्मिलित किया गया था। इनका विधिवत् शिक्षण एवं प्रशिक्षण दिया जाता था। इससे विद्यार्थियों की सामाजिक कुशलता में वुद्धि होती थी और गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने के बाद वे अपने परिवार का दायित्त्व आसानी से निभा सकते थे।

निष्ठा एवं धार्मिकता का संचार :

प्राचीन भारत की संस्कृति धर्म प्रधान थी। धर्म ने संस्कृति के समस्त पहलुओं को प्रभावित किया था। अतः शिक्षा पद्धति का धर्म से प्रभावित होना स्वाभाविक था। प्राचीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों में निष्ठा एवं धार्मिक भावना जाग्रत करना था। विद्या आरम्भ करने से लेकर विद्या ग्रहण करने तक जो संस्कार होते थे उनसे विद्यार्थियों के मस्तिष्क में पवित्रता एवं धार्मिकता का प्रादुर्भाव होता था। यह धार्मिक भावना उन्हें भौतिक जीवन के आकर्षणों से विमुख करती थी। इस कारण समाज में भ्रष्टाचार नहीं पनपता था। विद्यार्थी सत्यनिष्ठा के साथ आचार–विचार संयमित रखते हुए विद्या अध्ययन करते थे जिससे सुचरित्र का निर्माण होता था।

सामाजिक कुशलता का विकास :

प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य छात्रों में सामाजिक जीवन की भावना को विकसित कर उन्हें स्वस्थ एवं नैतिक नागरिक बनाना था। विद्यार्थियों को अपनी शिक्षा पूर्ण कर लेने के पश्चात् उन्हें गृहस्थ आश्रम अर्थात् सामाजिक कर्तव्यों का ज्ञान कराया जाता था जिससे वे पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्त्वों का भलीभांति निर्वाह कर सकें और समाज एवं राष्ट्र के उत्थान में सक्रिय भूमिका अदा कर सकें।

राष्ट्रप्रेम की भावना का विकास :

प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र प्रेम की भावना का विकास करना भी था। राष्ट्रवाद की संकल्पना का प्रमाण वेदों में प्राप्त होता है। 'माता भूमि पुत्रोऽहं अर्थात् पृथ्वी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ। वाक्य से राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के पारम्परिक सम्बन्ध स्पष्ट होते हैं। इस विचार धारा ने जीवन मूल्यों को जन्म दिया जो राष्ट्रवाद एवं राष्ट्र प्रेम में विकसित एवं पल्लवित हुए।

3. निष्कर्ष :

प्राचीन भारतीय शिक्षा निःसन्देह मनुष्य के व्यावहारिक जीवन को उत्तम बनाने में सहायक है। आज नीतिशास्त्र का क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि चिकित्सा, व्यवसाय, प्रशासन आदि विषयों पर नैतिक चर्चा प्रमुखता से की जाती है। यदि व्यवसाय में

E-ISSN No: 2456-6713

International Educational Applied Research Journal

Peer-Reviewed Journal-Equivalent to UGC Approved Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

Impact Factor: 5.924

नैतिकता का पालन किया जाय तो कोई भी वस्तुओं में मिलावट नहीं करेगा जिससे किसी को को हानि नहीं उठानी पड़ेगी और पर्यावरण प्रदूषण भी नहीं होगा। व्यापारी वर्ग को ''सत्यं वद'' व्यावहारिक रूप में प्रयोग करना चाहिए। प्राचीन शिक्षा पद्धति अपनाई गई विधियों को व्यवहार में लाकर हम अपनी सभ्यता को स्वस्थ विकास की ओर ले जा सकते हैं। प्राचीन शिक्षा द्वारा चरित्र निर्माण, शारीरिक विकास, व्यक्तित्त्व विकास, आचरण की शुद्धता, आध्यात्मिक विकास, अनुशासन का विकास, सत्य–निष्ठा, सामाजिक एवं व्यावसायिक कुशलता का विकास, राष्ट्र प्रेम की भावना आदि मानवीय गुणों का विकास होता था। वर्तमान राष्ट्रीय एवं सामाजिक समस्याओं के समाधान में एवं भ्रष्टाचार के निवारण में प्राचीन शिक्षा सहायक सिद्ध हो सकती है। विश्व शान्ति स्थापित करने एवं विश्व युद्ध को रोकने में भी यह सहायक सिद्ध हो सकती है क्योंकि यह ''परहित सरिस धरम नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई'' एवं ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की सीख (शिक्षा) देती है।

4. **संदर्भ–ग्रन्थ सूची :**

1. पाठक, श्याम बिहारी (2010), प्राचीन भारत में शिक्षा, कला प्रकाशन, वाराणसी।
2. कृष्ण कुमार (2017), प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति, श्री सरस्वती सदन, दिल्ली।
3. पाठक, पी.डी. एवं त्यागी, गुरूसरनदास (2018), भारत में शिक्षा : स्थिति, समस्याएं एवं मुद्दे, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. ओझा, डॉ. श्रीकृष्ण (2018), भारतीय दर्शन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
5. पाठक, पी.डी. एवं त्यागी, गुरूसरनदास (2015), शिक्षा के सिद्धान्त एवं शैक्षिक समाजशास्त्र, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
6. सिसोदिया, डॉ. अनुरोध सिंह (2010), योग एक परिचय, पराग बुक्स, गाजियाबाद।
7. पाण्डेय, डॉ. राजकुमारी (2008), भारतीय योग परम्परा के विविध आयाम, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
8. शिवजीराम (1996), सुगम योग शिक्षा आर्य पब्लिशिंग, नई दिल्ली।
9. उपाध्याय, आचार्य बलदेव (1991), भारतीय दर्शन, शारदा मन्दिर, वाराणसी।